कणिक नीति
– आचार्य सत्येन्द्र

आर्यसमाज के नियमोद्देश्य

1. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ– विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।
2. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।
3. वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।
4. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोडने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।
5. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।
6. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।
7. सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।
8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।
9. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।
10. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

दो शब्द

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने अपने अद्वितीय ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास की भूमिका में अत्यन्त मार्मिक शब्दों में इस देश की दुर्दशा कैसे हुई, अत्यन्त संक्षिप्त रूप में कुछ शब्द लिखे हैं, जिसका विस्तार ग्यारहवें समुल्लास में किया है, यहाँ महर्षिकृत भूमिका के शब्द इस प्रकार हैं-

"यह सिद्ध बात है कि पाँच सहस्र (हजार) वर्षों के पूर्व वेदमत से भिन्न दूसरा कोई भी मत न था क्योंकि वेदोक्त सब बातें विद्या से अविरुद्ध हैं। वेदों की अप्रवृत्ति होने के कारण महाभारत युद्ध हुआ। इनकी अप्रवृत्ति से अविद्याऽन्धकार के भूगोल में विस्तृत होने से मनुष्यों की बुद्धि भ्रम युक्त होकर जिसके मन में जैसा आया वैसा मत चलाया।"

उपरोक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि महाभारत से पहले न कोई मुसलमान था, न ईसाई, न बौद्ध, न हिन्दू, न जैन और न ही कोई मतमतान्तर चले थे, एक ही मत था, जिसे आर्य धर्म या वैदिक धर्म कहते हैं। हमारा नाम था आर्य इसलिए इस देश का प्राचीन नाम आर्यावर्त था।

भारत पिछले एक हजार वर्षों तक विदेशी आक्रान्ताओं के आक्रमणों का शिकार रहा, हमारे भारतीय वीरों ने लगातार इन आक्रमणों का प्रत्युत्तर अद्‌भुत वीरता से दिया कि उन आक्रान्ताओं को कभी चैन से न बैठने दिया, यह बात अलग है कि कभी हम पराजित हुए, तो कभी आक्रान्ता, इसलिए जो इतिहासकार यह कहते हैं कि भारत लगातार एक हजार वर्षों तक गुलाम रहा, इस कथन में जरा भी दम नहीं है। भारत कभी भी पूरी तरह किसी विदेशी का गुलाम न रहा।

हम कभी हारे तो अन्धविश्वास के कारण हारे तो झूठी अहिंसा के

कारण हारे, तो अपने ही देशद्रोहियों के कारण, हमारी पराजय का एक बहुत बड़ा कारण रहा परस्पर फूट, इतना होने पर भी हमारी विजय का मार्ग अवरुद्ध नहीं हुआ, परन्तु हमारे देश का यह एक दुर्भाग्य था और अभी भी है कि हमारे वीर राजाओं ने हाथ आए शत्रुओं को क्षमादान दिया और एक बार नहीं अनेकों बार, और शत्रुओं ने एक बार हमारे शासक को पकड़ा तो मार के ही छोड़ा शासकों की यह गलतियाँ ही देश की असंख्य बार लूटपाट हत्याएँ भयंकर नरसंहार का कारण बनी और बन रही हैं। शासकों को शत्रुओं के बारे में नीतिबदले इसी भावना से प्रस्तुत पुस्तक कणिक नीति जिसमें मात्र इक्यावन श्लोक हैं जो राजनीति के रहस्यों को उद्‌घारित करते हुए राजा को शत्रुओं के प्रति सावधान करते हैं। पृथ्वीराज चौहान और चीन भारत युद्ध के उदाहरण हमारे सामने हैं और ऐसे ही न जाने कितने अनगिनत उदाहरण इतिहास के पृष्ठों में छिपे पड़े हैं जिन्हें उघाड़ने की जरूरत है। जो महाभारत के आदि पर्व के अन्तर्गत है प्रकाशित की जा रही है। यदि इस पुस्तक से अध्येताओं को कुछ भी लाभ पहुँचा तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूँगा। पुस्तक रूपाँकन **श्री कमलेश पुरोहित जी-अजमेर** ने किया, आपका हृदय से धन्यवाद।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन का व्यय का भार श्री अशोक कुमार जी गुप्ता ने अपने ऊपर लेकर महान् पुण्य कार्य किया है, ऐसे उदारचेता श्री गुप्ता जी का मैं बहुत-बहुत धन्यवाद प्रकट करता हूँ। मैं उनका और उनके परिवार का सुख आनन्द निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होता रहे ऐसी ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ।

आचार्य सत्येन्द्रार्य
वानप्रस्थ साधक आश्रम,
आर्यवन, रोजड़, पत्रा. सागपुर,
जि. साबरकांठ, गुजरात

कणिक नीति

महाभारत युग में राजनीति और अर्थशास्त्र के पण्डित महामुनि कणिक का हस्तिनापुर में आना जाना लगा रहता था महाराज धृतराष्ट्र उनका बड़ा सम्मान करते थे। उनके नीतिमत्तापूर्ण उपदेशों का श्रवण कर धृतराष्ट्र जहाँ आत्मिक शान्ति प्राप्त करते थे वहाँ राजनीति के बारे में भी महत्त्वपूर्ण नीतियों के रहस्यपूर्ण मर्म समझकर राज्य आदि की सुरक्षा को लेकर कार्य योजनाएँ बनाते थे।

पाण्डु पुत्रों के बल, वीरता तेजस्विता आदि गुणों की निरन्तर बढ़ती हुई ख्याति को देखकर धृतराष्ट्र मन ही मन चिन्तित रहने लगा और उन्हें अपने प्रिय पुत्र दुर्योधन के भविष्य के बारे में चिन्ता सताने लगी यदि इसी प्रकार इन पाण्डु पुत्रों का वैभव आदि गुण बढ़ते चले गए तो मेरा पुत्र दुर्योधन राजसत्ता का उपभोग नहीं कर सकेगा। इसी चिन्ता से व्याकुल और भयभीत हुए महाराज धृतराष्ट्र ने उन्हें अपने महल में बुलाकर नीतिमत्ता पूर्ण उपदेशों का श्रवण किया। धृतराष्ट्र को जो उपदेश मुनि कणिक ने दिये उन उपदेशों को कणिक नीति के नाम से जाना जाता है, मुझे यह उपदेश बहुत रोचक लगा, शायद अन्यों को भी अच्छा लगे, इसी भावना से यह उपदेश पाठकों के समक्ष कणिक नीति के नाम से पाठकों के समक्ष रखा जा रहा है।

वैशम्पायन जी महाराज धृतराष्ट्र के विचार पाण्डवों के प्रति

कैसे हैं इसको स्पष्ट करते हुए जनमेजय को बतलाते हैं।

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वा पाण्डुसुतान्वीरान्बलोद्रिक्तान् महौजसः।

धृतराष्ट्रो महीपालश्चिन्तामगमदातुरः।। १।।

श्रुत्वा= सुनकर, **पाण्डु सुतान्**= पाण्डुपुत्रों को, **वीरान्**= वीरों को, **बले**= शक्ति, सामर्थ्य में, **उद्रिक्तान्**= अत्यधिक वृद्धि को प्राप्त हुए महान् ओज पराक्रम, उत्साह को धारण करने वाले, **धृतराष्ट्रः**= धृतराष्ट्र, **महीपालः**=सम्पूर्ण पृथ्वी का पालन पोषण करने वाले, **चिन्ताम्**= चिन्ता को **अगमद्**= प्राप्त हुए। **आतुरः**= बेचैन= अशान्त।

भावार्थ– सम्पूर्ण पृथ्वी पर शासन करने वाले महाराज धृतराष्ट्र पाण्डु पुत्रों के पराक्रम और निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होती हुई ख्याति को देखकर अत्यन्त चिन्तित रहने लगे, चिन्ता के कारण वे रात को ठीक से सो नहीं पाते थे।

तत आहूय मन्त्रज्ञं राजशास्त्रार्थ वित्तमम्।

कणिंक मन्त्रिणां-श्रेष्ठं धृतराष्ट्रोऽब्रवीद् वचः।। २।।

शब्दार्थ– **ततः**= उसके पश्चात् **आहूय**= बुलाकर, **मन्त्रज्ञम्**= उत्तम विचारों के जानने वाले, **राजशास्त्रार्थ वित्तमम्**= राजनीति और अर्थ शास्त्र के पण्डित **कणिक**= कणिक को **मन्त्रिणाम्श्रेष्ठम्**= सभी मन्त्रियों में गुणों में श्रेष्ठ, **धृतराष्ट्रः**= धृतराष्ट्र ने, **अब्रवीद्**=कहा, **वचः**= वाणी

भावार्थ- पाण्डवों की निरन्तर बढ़ती हुई ख्याति= प्रसिद्धि से चिन्तित महाराज धृतराष्ट्र ने जब स्वयं को अनिद्रा रोग से पीड़ित अनुभव किया तब एक दिन उसके पश्चात् राजनीति और अर्थशास्त्र तथा अत्यन्त श्रेष्ठ विचारों को देने वाले मन्त्रियों में श्रेष्ठ महाविद्वान् कणिक को बुलाकर उनसे यह वचन कहा-

धृतराष्ट्र उवाच

उत्सिक्ताः पाण्डवा नित्यं तेभ्योऽसूये द्विजोतम।
तत्र मे निश्चितं यत्तु सन्धिविग्रहकारणम्।।
कणिक त्वं ममाचक्ष्व करिष्ये वचनं तव।। ३।।

शब्दार्थ- **उत्सिक्ता**= सब प्रकार की उन्नति में अत्यधिक वृद्धि को प्राप्त हुए, **पाण्डवाः**= पाण्डव, **नित्यम्**= नित्यप्रति **तेभ्यः**= उनसे, **असूये**= ईर्ष्या में, **द्विजोत्तम**= ब्राह्मणों में श्रेष्ठ **तत्र**= उस स्थिति में, **निश्चितम्**= निश्चय, यत्= जो **सन्धिविग्रहकारणम्**= **सन्धिविग्रह**= शत्रुता, मित्रता का **कारण**-कणिक! हे कणिक **त्वम्**= तुम मुझे कहो **करिष्ये**= करूँगा। तब **वचनम्**= तुम्हारे कथन के अनुसार

भावार्थ- हे द्विजों में उत्तम कणिक! पाण्डु पुत्रों की नित्य प्रति बढ़ती हुई उन्नति को देख-देखकर मेरा मन ईर्ष्या= डाह से भरा उठा है, उस स्थिति में आप ही मुझे निश्चित रूप से बताएँ कि मैं पाण्डवों से शत्रुता का व्यवहार करूँ या मित्रता का, जैसा आप कहेंगे मैं वैसा ही करूँगा।

कणिक उवाच

नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृतपौरुषः।
अच्छिद्रश्छिद्रदर्शी स्यात् परेषां विवरानुगः।। ४।।

शब्दार्थ- नित्यम्= सदा ही, **उद्यतदण्डः**= अपराधी और शत्रुओं को यथायोग्य दण्ड देने को सदा तैयार रहें, **स्यात्**= होना चाहिए, **नित्यम्**= और सदा, **विवृत पौरुषः**= अपने **सामर्थ्य**= शक्ति को शत्रुओं के सामने दिखाते रहना चाहिए, **अच्छिद्रः**= अपनी कमजोरियों या दुर्बलताओं को शत्रु से छिपाकर रखे, **छिद्रदर्शीः**= कमजोरी व न्यूनताओं को देखने वाला, **स्यात्**= होवे, **परेषाम्**= शत्रुओं की, **विवरानुगः**= शत्रुओं की शक्ति दुर्बल है यह ज्ञान होने पर उनपर चढ़ाई कर दे।

भावार्थ- राजा सदा ही विद्रोहियों और अपराधियों को न्याययुक्त दण्ड देने में ढील न वर्त्ते, शत्रुओं के छिद्रों का सदा पता लगाता रहे जैसे ही शत्रु कमजोर पड़े उसे उचित अवसर जानकर उस पर चढ़ाई करके पराजित कर दे।

नित्यमुद्यदण्डाद्धि भृशमुद्विजते जनः।
तस्मात् सर्वाणि कार्याणि दण्डनैव विधारयेत्।। ५।।

शब्दार्थ- नित्यम्= सदा, **उद्यतदण्डाद्**= दण्ड देने हेतु सदा तैयार रहने वाला, **हि**= निश्चय, **भृशम्**= बहुत, **उद्विजते**= डरता है, **जनः**= मनुष्य, **तस्मात्**=इसलिए, **सर्वाणि**= सभी **कार्याणि**= कार्य

दण्डेन एव= दण्ड से ही **विधारयेत्**=पूरा करे।

भावार्थ- जो शासक या राजा अपराधियों को यथायोग्य दण्ड देने में कभी भी प्रमाद नहीं करता, उससे दुष्ट लोग दण्ड के भय से सदा भयभीत रहते हैं, अत: राजा को अपने सभी कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए यथायोग्य दण्ड का प्रयोग करना चाहिए।

नास्याच्छिद्रं परः पश्येच्छिद्रेण परमन्वियात्।
गूहेद् कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद् विवरमात्मनः।। ६।।
नासम्यक्कृतकारी स्यादुपक्रम्य कदाचन।
कण्टको ह्यपि दुश्छिन्न आस्त्रावं जनयेच्चिरम्।। ७।।

शब्दार्थ- **न**= नहीं, **अस्य**= इसके, राजा के **छिद्रम्**= दुर्बलता=, कमजोरी, भेद, दोष **परः**= दूसरा= शत्रु **पश्येद्**= जाने, देखे **छिद्रेण**= **छिद्र**= कमजोरी दुर्बलता से **परम्**= दूसरे के **अन्वियात्**= जाने, **गूहेत्**= छिपाये रखे **कूर्म**= कछुआ की **इव**= भाँति **अङ्गानि**= अङ्गों की **रक्षेद्**= रक्षाकरे **विवरम्**= छिद्र= दोषों को **आत्मनः**= अपने राज्य के।

सम्यक् कृतकारी= किसी कार्य को ठीक ढंग से करने वाला **उपक्रम**= आरम्भ करके **कदाचन**= कभी भी **न**= नहीं **असम्यक्**=बीच में न **स्याद्**= छोड दे। **कण्टकः**= शरीर में विधा काँटा, **हि**= अपि= भी **दुश्छिन्नः**= टूटकर अन्दर रह जावे **चिरम्**= लम्बे समय तक **आश्रावं जनयेत्**= मवाद उत्पन्न करता रहता है।

भावार्थ– बुद्धिमान् राजा सदा इस बात का प्रयत्न कछुए की तरह करता रहे कि सदा ही अपने छिद्रों=दोषों निर्बलताओं को छिपाए रखे शत्रु को उसकी भनक तक न मिले किन्तु शत्रुओं की किसी भी प्रकार की दुर्बलता को जानकर उचित अवसर पाकर आक्रमण कर दे, किसी कार्य का प्रारम्भ कर बीच में नहीं छोड़े अर्थात् उसे पूरा करे, अन्यथा वह अपूर्ण कार्य वैसे ही दुःख देता रहता है, जैसे शरीर में घुसा हुआ काँटा आधा टूटकर भीतर ही रह जाने पर मवाद का स्राव लम्बे समय तक कष्ट का कारण बना रहता है।

वधमेव प्रशंसन्ति शत्रूणामपकारिणाम्।
सुविदीर्णं सुविक्रान्तं सुयुद्धं सुपलायितम्।। ८।।
आपद्यायदि काले च कुर्वीत न विचारयेत्।
नाविज्ञेयो रिपुस्तात दुर्बलोऽपि कथञ्चन।। ९।।

शब्दार्थ– **वधमेव**= नष्ट करने की =प्राणों से वियुक्त कर देने की ही प्रशंसा करते हैं, **शत्रुणाम् अपकारिणाम्**= अपना अनिष्ट करने वाले शत्रुओं की **सुविदीर्णम्**= अच्छी तरह छिन्न-भिन्न कर दे **सुविक्रान्तम्**= अत्यन्त वीर पुरुष को **सुयुद्धम्**= युद्ध में जो अत्यन्त कुशलता से युद्ध करने वाला हो **सुपलायितम्**= थोड़े ही प्रयत्न से उसे खदेड़ दे, **आपद्यादायदि काले च**= ओर संकट काल में, **कुर्वीत**= न **विचारयेत्**= उस समय उसके साथ संबधादि का विचार न करे, **न**=

नहीं, **विज्ञेय**= जानना चाहिए, **रिपु**= शत्रु को, **तात**= हे तात! दुर्बलः **अपि**= कमजोर होता हुआ भी **कथञ्चन**= कभी भी।

भावार्थ– नीति के जानने वाले पुरुष घोर अनिष्ट करने वाले अपकारी शत्रुओं को मार देने की ही प्रशंसा करते हैं, अत्यन्त पराक्रमी पुरुष को भली भाँति कुशलता से युद्ध करता है उसे भी विपदा काल उपस्थित होने पर समूल नष्ट कर दे, उसकी बुरी दशा करके मार भगाये उस समय उसके साथ होने वाले सम्बन्ध आदि का भी विचार न करे, यदि शत्रु किसी भी प्रकार दुर्बल पड़ गया हो तो भी दुर्बल कमजोर समझकर उपेक्षा न करे अर्थात् उसे नष्ट कर दे।

अल्पोऽप्यग्निर्वनं कृत्स्नं दहत्याश्रयसंश्रयात्।
अन्धः स्यादन्धवेलायां वाधिर्यमपि चाश्रयेत्।। १०।।

शब्दार्थ– **अल्पः**=थोडी होती हुई भी, **अग्निः**= **आग**=अग्नि, **वनम्**= **वनको**= **कृत्स्नम्**= सम्पूर्ण दहति= जला देती है, **आश्रयंसंश्रयात्**= **ईंधन**= घास तृणादि का सहारा ले लेने से, अपना **सामर्थ्य**= शक्ति कम हो जाने पर, शत्रु के वश में हो जाने पर, अन्धे होने का समय उपस्थित होने पर= अन्धे की तरह व्यवहार करे= सुनने के समय बहरा होने का अभिनय करे।

भावार्थ– जैसे मात्र थोड़ी सी अग्नि सूखी घासादि का आश्रय पाकर एक बड़े वन को भी जला के राख कर देती है वैसे ही एक छोटा सा शत्रु भी जिसकी उपेक्षा कर दी गई है कि इससे क्या हानि हो सकती

है अर्थात् कुछ भी नहीं। वह भी थोड़े ही समय में शक्तिशाली बनकर बड़ा भयंकर अनिष्ट कर डालता है, किसी कारणवश शत्रु के चुंगल में फँस जाने पर अन्धे और बहरे की तरह व्यवहार करे, अर्थात् चाहे उसके साथ शत्रु कैसा ही क्रूर और अपमान जनक व्यवहार करे, सबको चुपचाप सहन करता रहे।

कुर्यात् तृणमयं चापं शयीत मृगशायिकाम्।
सामादिभिरूपायैस्तु हन्याच्छत्रुं वशे स्थितम्।। ११।।

शब्दार्थ- कुर्यात्= कर देना चाहिए, **तृणमयम्**= कमजोर तिनके जैसा, **चापम्**= धनुष को, **शयीत**= सो जावे, **मृगशायिकाम्**= हिरन का शिकार करने वाले व्याध की तरह, **सामादिभिः उपायैः**= साम, दाम आदि उपायों से, **तु**= तो **हन्यात्**= मार डाले, **शत्रुं**= शत्रु को **वश**=आधीनता में **स्थितम्**= स्थित हुआ।

भावार्थ= युद्धादि के अवसर पर यह बात स्वाभाविक है कि दो पक्षों में एक की पराजय होना निश्चित है। पराजित राजा को उस स्थिति में विजयी पक्ष की ओर से अनेक विध संकट झेलने पड़ते हैं यदि पराजित राजा का वध करवा दिया जाता है तब तो यह श्लोक निरर्थक सिद्ध होता है यदि किसी प्रकार वह जीवित बच जाता है, परन्तु है शत्रुओं के वश में ही, इस स्थिति में पराजित राजा का व्यवहार कैसा होना चाहिए इस सम्बन्ध में यह श्लोक नीति का उपदेश देता है।

राजा पराधीनता की इस घोर अवस्था में धनुष को तिनके की तरह झुका दे अर्थात् अपने बल और अस्त्र-शस्त्रों का गर्व छोड़कर शत्रु के समक्ष बिल्कुल दीन हीन बेबस अशक्त और असमर्थ जैसा बन जाये, जिसे देखकर शत्रु पक्ष को यह पक्का विश्वास हो जाये कि अब मेरा यह कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता, और क्या करे जैसे व्याध हिरन को मारने के लिए नींद का अभिनय करके जहाँ मृग घूमते हैं, सो जाता है हिरन यह सोचकर कि व्याध तो सो रहा है इस बात से आश्वस्त होकर मृग उसके आस-पास हरी-हरी कोमल घास चरने लगते हैं तभी अवसर पाकर व्याध शिकार करने में सफल हो जाता है इसी प्रकार बन्धन में पड़ा राजा सर्वदा उदासीन की सी अवस्था बना ले और जैसे ही शत्रु किसी कारण कमजोर पड़े तभी अवसर देख के साम-दाम आदि आदि उपायों से उसका नाश कर डाले।

दया न तस्मिन् कर्त्तव्या शरणागत इत्युत।
निरुद्विग्नो हि भवति महताज्जायते भयम्।। १२।।

शब्दार्थ- दया= करुणा, **न**= नहीं, **तस्मिन्**= उस शत्रु पर, **कर्त्तव्या**= करनी चाहिए, **शरणागतः**= यह मेरी शरण में आया है, **इति**= इस प्रकार, **उत**= और ऐसा न करने पर राजा, **निरुद्विग्नः**= बेचैन, **हि**= निश्चय से बना रहता है, **भवति**= होता है शत्रु के जीवित रहते राजा, **महतात्**=बड़े भारी भय से युक्त होकर सदा ही, **जायते**= उत्पन्न करता रहता है, **भयम्**= भय को।

भावार्थ- युद्ध में पराजित राजा पर कभी भी विश्वास न करे, यदि वह किसी आपात् परिस्थिति में आकर हाथ जोड़ चरणों में पड़कर दीनतापूर्ण वचन बोलने लगे, मैं आपकी शरण में हूँ, मेरी रक्षा करो इस स्थिति में भी शत्रु को जीवित छोड़ने की भूल कभी न करे अर्थात् उससे दया का व्यवहार न करे, अर्थात् यथावसर शत्रु को मार ही देना चाहिए। शत्रु के बचे रहने पर राजा कभी भी पूर्णतया भयमुक्त नहीं रह सकता, जब तक वह जीवित है तब तक शत्रु से किसी न किसी रूप में भय बना ही रहता है, इसलिए शरणागत आए शत्रु को मार ही डाले ऐसा करने पर ही राजा निर्भय रह सकता है।

हन्यादमित्रं दानेन तथा पूर्वापकारिणम्।

हन्यात् त्रीन् पञ्च सप्तेति परपक्षस्य सर्वशः।। १३।।

शब्दार्थ- **हन्याद्**= मार डाले, **अमित्रम्**= शत्रु को, **दानेन**= दान के द्वारा, **तथा**= उसी प्रकार पूर्व जो शत्रु बनकर पहले हानि करता था किन्तु किसी कारण वश अब सेवक बन गया हो उसे भी जीवित न छोड़े, **हन्यात्**= मारे डाले, **त्रीन्** = त्रिवर्ग का, **पञ्च**= पाँच वर्ग का, **सप्त**= सात वर्ग का, **इति**= इस प्रकार पर **पक्षस्य**= शत्रु पक्ष के, **सर्वशः**= सब प्रकार से।

भावार्थ- जिस शत्रु से निरन्तर खतरा या भय बना रहता हो जिसकी बोलने चलने आदि क्रियाएँ संदिग्ध दिखाई पड़ती हों, इस प्रकार के शत्रु को जीवित रखना किसी भी प्रकार से हितावह नहीं है।

इस संबन्ध में नीतिकार कणिक महाराज धृतराष्ट्र को सावधान करते हुए कहते हैं–

शत्रु को उसकी अनुकूलता के अनुरूप धनादि दान देकर मुख पर प्रसन्नता की भावना प्रकट करते हुए यह विश्वास दिलावे जानो वह उसकी ही है और उचित अवसर देखकर उसका वध करवा देवे। दूसरी बात कही– वह शत्रु जो निरन्तर राज्य की हानि करता रहा हो बड़ी–बड़ी हानियाँ जिसने कर डाली हों पुनः छलपूर्वक सेवक बन गया हो उस पर भी दया न दिखाकर वध कर दे। इस प्रकार घोर अपकारी शत्रु के तीन पाँच और सात वर्ग को सर्वथा नष्ट कर देवे।

तीन पाँच और सात वर्ग को श्रद्धेय स्व. स्वा. श्री जगदीश्वरानन्द जी महाराज ने अपने द्वारा संपादित महाभारत में निम्न प्रकार से उद्‌घाटित किया है।

स्वामी जी के शब्दों में–

१. यहाँ त्रिवर्ग का तात्पर्य है तीन प्रकार की शक्तियाँ

(१) ऐश्वर्य शक्ति (२) उत्साह शक्ति (३) मन्त्रशक्ति

दुर्ग आदि पर आक्रमण करके शत्रु की ऐश्वर्य शक्ति नष्ट करनी चाहिए विश्वसनीय व्यक्तियों द्वारा अपने उत्कर्ष का बखान कराकर शत्रु को तेजहीन करते हुए उसके उत्साह को मन्द करना उत्साह शक्ति का नाश करना है। गुप्तचरों द्वारा उसकी गुप्त मन्त्रणा को प्रकट कर देना ही मन्त्र शक्ति का नाश करना है।

इस संबन्ध में नीतिकार कणिक महाराज धृतराष्ट्र को सावधान करते हुए कहते हैं–

शत्रु को उसकी अनुकूलता के अनुरूप धनादि दान देकर मुख पर प्रसन्नता की भावना प्रकट करते हुए यह विश्वास दिलावे जानो वह उसकी ही है और उचित अवसर देखकर उसका वध करवा देवे। दूसरी बात कही– वह शत्रु जो निरन्तर राज्य की हानि करता रहा हो बड़ी–बड़ी हानियाँ जिसने कर डाली हों पुनः छलपूर्वक सेवक बन गया हो उस पर भी दया न दिखाकर वध कर दे। इस प्रकार घोर अपकारी शत्रु के तीन पाँच और सात वर्ग को सर्वथा नष्ट कर देवे।

तीन पाँच और सात वर्ग को श्रद्धेय स्व. स्वा. श्री जगदीश्वरानन्द जी महाराज ने अपने द्वारा संपादित महाभारत में निम्न प्रकार से उद्घाटित किया है।

स्वामी जी के शब्दों में–

१. यहाँ त्रिवर्ग का तात्पर्य है तीन प्रकार की शक्तियाँ

(१) ऐश्वर्य शक्ति (२) उत्साह शक्ति (३) मन्त्रशक्ति

दुर्ग आदि पर आक्रमण करके शत्रु की ऐश्वर्य शक्ति नष्ट करनी चाहिए विश्वसनीय व्यक्तियों द्वारा अपने उत्कर्ष का बखान कराकर शत्रु को तेजहीन करते हुए उसके उत्साह को मन्द करना उत्साह शक्ति का नाश करना है। गुप्तचरों द्वारा उसकी गुप्त मन्त्रणा को प्रकट कर देना ही मन्त्र शक्ति का नाश करना है।

(२) अमात्य= मन्त्री राष्ट्र दुर्ग, (किला) कोष और सेना ये पाँच प्रकृतियाँ ही पाँच वर्ग हैं।

(३) साम, दान, दण्ड, भेद, उद्वन्धन, विशेष योग और आग लगाना शत्रु को दबाने या वश में करने के ये सात साधन ही सप्त वर्ग हैं।

मूलमेवादितश्छिन्द्यात् परपक्षस्य नित्यशः।
ततः सहायाँस्तत्पक्षान् सर्वांश्च तदनन्तरम्।। १४।।

शब्दार्थ- मूलम्= मूल को (जड़ आधार) **एव** (ही) **आदितः** (पहले) **छिन्द्यात्**= नष्ट कर देवे तोड़फोड़ देवे, **पर पक्षस्य**= शत्रु पक्ष का **नित्यशः**= सदा, **ततः**= उसके बाद **सहायान्**= सहायता करने वालों को **तत्**= शत्रु के पक्षवालों को, **सर्वान्**= सभी को, **च**= और, **तदन्तरम्**= उसके बाद।

भावार्थ- सबसे पहले शत्रु पक्ष का जो मूल आधार है जहाँ से शत्रु को बल प्राप्त होता है उस बल का सर्वथा विनाश कर देवे। उसके पश्चात् शत्रु के सहायकों को मरवा देवे इसके बाद शत्रु पक्ष से जो भी संबन्ध रखते हैं उनको भी जैसे भी हो समाप्त कर देवे, इस प्रकार राजा सदा ही शत्रु पक्ष का विनाश करने में लगा रहे।

छिन्नमूले ह्यधिष्ठाने सर्वे तज्जीविनो हताः।
कथं नु शाखास्तिष्ठेरँश्छिन्नमूले वनस्पतौ।। १५।।

शब्दार्थ- छिन्नमूले= जड़ को नष्ट कर देने पर **हि**= क्योंकि **अधिष्ठाने**= उसके आश्रय में रहने वाले **सर्वे**= सभी **तत्= जीविनः**= उसके आश्रित होकर जीवन प्राप्त करने वाले **हताः**= नष्ट हो जाते हैं, **कथम्**= किस प्रकार **नु**= निश्चय से **शाखा**= वृक्ष की टहनियाँ, **तिष्ठेरन्**= स्थिर रह जावें, **छिन्नमूले**= मूल को नष्ट कर देने पर **वनस्पतौ**= वृक्ष पर।

भावार्थ- क्योंकि आधार को नष्ट= समूल उच्छेद कर देने मात्र से आधार के आश्रित होकर जो जीवन प्राप्त करते, बढ़ते-फूलते ओर विकसित होते हैं पूर्णतः निष्प्राण होकर रह जाते हैं, आश्रितों की क्रियाएँ ऐसे ही नष्ट हो जाती हैं जैसे सूर्य के निकलने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है अर्थात् शत्रुओं का समूल नाश कर देने पर उनके आश्रय में पलने वाले भी ऐसे ही नष्ट हो जाते हैं, जैसे किसी वृक्ष की जड़ का समूल नाश कर देने पर शाखा पत्ते आदि भी नष्ट हो जाते हैं मुरझा जाते हैं मर जाते हैं, अतः राजा को चाहिए कि अपने शत्रुओं का समूल विनाश करके ही दम ले, तभी वह निर्भय रह सकता है अन्यथा नहीं।

एकाग्रः स्यादविवृतो नित्यं विवरदर्शकः।
राजन् नित्यं सपत्नेषु नित्योद्विग्नः समाचरेत्।। १६।।

शब्दार्थ- एकाग्र= सावधान, **स्याद**= होवे **अविवृतः उद्घाटित**= न करे **नित्यम्**= सदा **विवरदर्शकः**= छिद्रों को जानने वाला **राजन्**= **नित्यम्**= सदा **सपत्नेषु**= शत्रुओं कीं गतिविधि को

भावार्थ– राजा को अपने शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए सब प्रकार के उपायों का आश्रय लेकर शत्रु के नाश करने के लिए सदा प्रयत्न करते रहना चाहिए। जनता में प्राय: धार्मिक मनुष्यों के प्रति धार्मिक यज्ञ भाग के लिए धार्मिक भावना का सहज ही जागरण हो जाया करता है, जनता की इस दुर्बलता को समझकर धूर्त संन्यासी आदि का वेश धारण करके उसे दिग्भ्रमित करते रहते हैं। इसी आशय को ध्यान में रखकर कणिक कहता है कि शत्रु का नाश करने के लिए संन्यासी या कर्मकाण्डी का भी वेश धारण करना पड़े तो कर लेना चाहिए। शत्रु देश के लोगों के मन में वह यह विश्वास स्थापित कर देने में समर्थ हो जाय कि वह उसका अपना ही है कोई पराया नहीं जब जनता में अपना विश्वास पूर्ण जम जाय तभी अवसर प्राप्त कर घात लगाकर शत्रु को नष्ट कर देना। हाँलाकि कोई कह सकता है कि यह तो विश्वासघात है, परन्तु राजा के लिए अन्यायकारी तथ अनीति पर चलने वाले शत्रु राजा के प्रति यह व्यवहार उचित ही है अन्यथा उससे भय सदा बना ही रहेगा।

वहेदमित्रं स्कन्धेन यावत् कालविर्पययः।
ततः प्रत्यागते काले मिन्द्याद् घटमिवाश्मनि।।१८।।

शब्दार्थ– **वहेद्**= ढोए, **अमित्रम्**= शत्रु, **स्कन्धेन**= कन्धे से, **यावत्**= जब तक, **कालविपर्यय:**= विपरीत समय, **ततः**=उसके पश्चात्, **प्रत्यागते काले**= अनुकूल समय उपस्थित होने पर, **मिन्द्याद्**=

फोड़ दे= नष्ट कर दे, **घटम् इव**= घड़े की तरह, **अश्मनि**= पत्थर पर

भावार्थ– राजा आदि पुरुष शत्रु के द्वारा पराजित होने पर इस बात को सदा ध्यान में रखे जब तक परिस्थिति अपने अनुकूल नहीं है शक्ति सामर्थ्य इतनी नहीं है कि शत्रु का विनाश कर सके, तब तक शत्रु की हर बात को महत्त्व दे उसका आदर करे, शत्रु के बल की प्रशंसा करता रहे अर्थात् उसे हर प्रकार से सहन करे जैसे कन्धे पर बोझ, ढोनेवाला तब तक बोझ=भार ढोता है जब तक उसका गन्तव्य स्थान नहीं आ जाता। गन्तव्य स्थान आने पर बोझ को नीचे पटक देता है, इसी प्रकार शत्रु के द्वारा अपमानित तिरस्कार आदि कष्टों को चुपचाप धैर्यपूर्वक तब तक सहन करता रहे, जब तक अपनी सामर्थ्य की वृद्धि न हो जावे, सामर्थ्य बढ़ जाने पर शत्रु का उसी प्रकार विनाश कर दे जैसे अनुपयोगी घड़े को पत्थर पर पटक कर उसका विनाश कर दिया जाता है।

अमित्रो न विमोक्तव्यः कृपणं बह्वपि ब्रुवन्।
कृपा न तस्मिन् कर्त्तव्या हन्यादेवापकरिणम्।। १९।।

शब्दार्थ– **अमित्रः**=शत्रु, न नहीं **विमोक्तव्यः** = छोड़ना चाहिए, **कृपणम्**= दीन दुःखियों जैसे वचन, **बह्वपि**= बहुत प्रकार के भी, **कृपा**= दया, **न**= नहीं, **कर्त्तव्या**= करना चाहिए, **हन्याद् एव**= वध कर ही डाले, **अपकारिणम्**= अपकार करने वाले को।

भावार्थ– राज्य की समृद्धि करने के इच्छुक राजा को चाहिए कि अपकार करने वाले शत्रु पर किसी भी प्रकार की दया नहीं दिखानी

चाहिए चाहे वह कितनी ही दीन दु:खियों जैसी वाणी क्यों न बोले इस पर जरा भी ध्यान न देता हुआ शत्रु को अवश्य मार ही डालना चाहिए।

हन्यादमित्रं सान्त्वेन तथा दानेन वा पुनः।

तथैव भेददण्डाभ्यां सर्वोपायैः प्रशान्तयेत्।। २०।।

शब्दार्थ- अमित्रम्= शत्रु को, **सान्त्वेन**= प्रेमपूर्ण व्यवहार से अपने में मिला लेना, **वा**= या, **पुनः**= फिर धनादि का दान देकर, यदि ऐसे भी वश में न आये तो साम, दाम, दण्ड भेद आदि से उसी प्रकार ही शत्रुओं में परस्पर फूट डाल दे, इसमें भी असफल हो जाये तो कठिन दण्ड से वश में करे अर्थात् शत्रु को किसी भी अवस्था में जीवित नहीं छोड़ना चाहिए जो जो भी उपाय शत्रु को नष्ट करने में सहायक हो उन सभी उपायों से शत्रु को मार डाले।

भयेन भेदयेद् भीरुं शूरमञ्जलिकर्मणा।

लुब्धमर्थप्रदानेन समं न्यून तथौजसा।। २१।।

शब्दार्थ- भीरम्= कायर को, **भयेन**= डर दिखलाकर, **भेदयेद्**= फोड़ देवे, **अञ्जलिकर्मणा शूरम्**= हाथ जोड़कर शूरवीर को, लोभी को धन देकर और अपने बराबर या कम बल वाले को शक्ति दिखाकर वश में करे।

भावार्थ- राजा के ऊपर सम्पूर्ण राज्य का भार होने से उसे सब ओर से सावधानी रखनी पड़ती है, इसलिए शत्रु का किसी भी प्रकार से बल न बढ़ने पावे-उसके बल को क्षीण करने के लिए कहा-कायर

डरपोक को मृत्यु आदि का भय उपस्थित करके फूट डाल देवे शूरवीर को विनम्रभाव से हाथ जोड़कर लोभी को धन राज्यादि का लालच देकर और अपने तुल्य या कम बल वाले को युद्ध से वश में कर लेवे।

पुत्रः सखा वा भ्राता वा पिता वा यदि वा गुरुः।
रिपुस्थानेषु वर्तन्तो हन्तव्या भूतिमिच्छता।। २२।।

शब्दार्थ- **पुत्रः**= पुत्र, **सखा**= मित्र, **भ्राता**= भाई, **पिता**= जनक, **गुरुः**= शिक्षक, **रिपुस्थानेषु वर्त्तन्त**= यदि ये शत्रु के समान व्यवहार करने लगें **भूतिमिच्छता हन्तव्या**= अपने और अपने राज्य का ऐश्वर्य वृद्धि करने वाले के लिए राजा इनका वध करवा देवे अन्यथा ये राज्य के लिए बहुत घातक सिद्ध होते हैं।

भावार्थ- ऐश्वर्य चाहने वाले राजा को चाहिए कि युद्धकाल में पुत्र, मित्र, भाई, पिता या गुरु कोई भी क्यों न हो यदि ये शत्रुओं के समान व्यवहार करते हैं या शत्रुओं से मिलकर राजा से शत्रुवत् आचरण करते हैं इस प्रकार की विषम स्थिति उत्पन्न होने पर इनका वध कर दे या करा देवे।

शपथेनाप्यरि हन्यादर्थदानेनन वा पुनः।
विषेण मायया वापिनोपेक्षेत कथञ्चन।। २३।।

शब्दार्थ- **शपथेनअरिम्**= शत्रु को विश्वास दिलाने वाली सौगन्ध **अपि**= भी खाकर **हन्याद्**= नष्ट कर दे, **अर्थ दानेन**= धनादि पदार्थों को दान देने से **वा**= या **पुनः**= फिर **विषेण**= घोर विष देने से

मायया= कपट से धोखा देके **वा**= या **अपि**= भी **न**= **उपेक्षेत**= उपेक्षा करे **कथञ्चन**= कभी भी।

भावार्थ- शत्रु को झूठी सौगन्ध देकर, धन आदि का दान देके या विष के द्वारा या छलकपट से मार डाले। शत्रु की कभी भी, किसी भी प्रकार से उपेक्षा नहीं करनी चाहिए अर्थात् शत्रु का वध करने में किञ्चित मात्र भी प्रमाद न करे जितना शीघ्र हो सके उतना ही शीघ्र शत्रु का वध कर देवे।

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथप्रतिपन्नस्य न्यायं भवति शासनम्।। २४।।

शब्दार्थ- कार्यम्= उचित कार्य को, **अकार्यम्**= अकरणीय कार्य को, **अजानतः**= न जानते हुए, **अवलिप्तस्य**= घमण्डी, किसी राष्ट्रद्रोही कार्य में लिप्त **उत्पथप्रतिपन्नस्य गुरोः**= कुमार्ग पर चलने वाले गुरु को दण्ड देना उचित ही होता है।

भावार्थ- यदि गुरु भी उचित अनुचित कार्य और उसके परिणाम पर विवेकपूर्वक ठीक से न जानता हुआ यदि किसी राष्ट्रविरोधी गतिविधि में लिप्त हो या घमण्डी होकर कुमार्ग पर चल पड़ा हो तो इस स्थिति में राजा को उचित दण्ड देना ही राजा का धर्म है।

क्रुद्धोऽप्य क्रुद्धरूपः स्यात् स्मितपूर्वाभिभाषिता।
न चाप्यन्यमद ध्वंसेत कदाचित् कोपः संयुतः ।। २५।।
प्रहरिष्यन् प्रियं ब्रूयात् प्रहरन्नपि भारत।

प्रहृत्य च कृपायीत शोचेत च रुदेत च।। २६।।

शब्दार्थ- क्रुद्ध अपि अक्रुद्धरुपः स्यात्= मन क्रोध से भरे रहने पर भी व्यवहार में क्रोध को प्रकट न होने दे, हँसते हुए बातचीत करे, कभी क्रोध से यदि पीड़ित हो जाये तो भी क्रोध के वश में होकर दूसरे के साथ अपमानजनक उद्वेग उत्पन्न करने वाली वाणी का प्रयोग न करे। **भारत!**= हे भारत! **प्रहरिष्यन् प्रियं ब्रूयात प्रहरन्नपि**= प्रहार करने वाला प्रहार करते समय भी उसको प्रिय लगने वाला वचन बोले, **प्रहृत्य य कृपायीत**= और प्रहार करके चोट पहुँचा के उस पर दया करे **शोचेत रुदेत**= शोक से पीड़ित हो आँसू बहावे।

भावार्थ- शत्रु के लिए अपने मन में क्रोध भी हो तो भी उसे गुप्त ही रखे अर्थात् प्रकट न करे प्रसन्नमुख बातचीत करते हुए यदि क्रोध आ जाय तो भी क्रोध में भरकर उसके लिए अपमानजनक कटु शब्दों का प्रयोग न करे। शत्रु को चोट पहुँचाने से पहले चोट पहुँचाते समय और प्रहार करने के बाद भी दुःख से पीड़ित होकर आँसू बहावे।

आश्वासयेच्चापि परं सान्त्वधर्मार्थवृत्तिभिः।
अथास्य प्रहरेत् काले यदा विचलिते पथि।। २७।।

शब्दार्थ- परम् सान्त्व धर्म अर्थ, वृत्तिभिः आश्वासयेत्= शत्रु को अच्छी तरह समझा बुझाकर शान्ति देते हुए रखे, **धर्म**= दया आदि का व्यवहार करे धनादि की सहायता देवे और सदभावपूर्ण व्यवहार करे, हम तुम्हें कुछ नहीं कहेंगे, इस प्रकार का आश्वासन देता रहे और

जब अपने मार्ग से विचलित होकर गलत व्यवहार करे तब समय देखकर इस पर प्रहार करे और मार डाले।

भावार्थ- शत्रु को सब प्रकार से सान्त्वना आदि देकर यदि वह कुनीति पूर्वक गलत मार्ग पर चल पड़े उस स्थिति को भाँपकर काल की परिस्थिति समझते हुए शत्रु पर प्रहार करे और उसका वध कर देवे।

अपि घोरापराधस्य धर्ममाश्रित्य तिष्ठतः।

स हि प्रच्छाद्यते दोषः शैलो मेघैरिवासितैः।। २८।।

शब्दार्थ- **अपि**= भी **घोरापराधस्य**= घोर अपराध करने वाले का **धर्ममाश्रित्य**= धर्म का आश्रय लेकर (कुछ समय के लिये) **तिष्ठतः**= ठहरे हुये का **सः**= वह **प्रच्छाद्यते**= ढक जाता है, **दोषः**= अपराध **शैलः**= पर्वत **मेघैरिवासितैः**= गहरे बादलों से।

भावार्थ- दिखावे के लिए धर्म मार्ग का आश्रय लेके घोर अपराध करने वाले का भी उसका वह अपराध वैसे ही ढक जाता है जैसे उमड़ते-घुमड़ते मेघ की काली घटाओं से पर्वत ढक जाता है।

यः स्यादनुप्राप्तवध तस्यागांर प्रदीपयेत्।

अधनान् नास्तिकास्वे न विषये स्वेनवासयेत्।। २९।।

शब्दार्थ- **यः**= जो राजा शत्रु का, **स्यादनुप्राप्तवध**= शीघ्र वध करना चाहे **तस्य**= उसके **आगारम्**= घर को **प्रदीपयेत्**= जला देवे **अधनान्**= निर्धनों को=गरीबों को, **नास्तिकान्** = जो ईश्वर, आत्मा, कर्मफल आदि को न मानता हो, ऐसे नास्तिको को **चौरान्**= चोरों को

विषये= जिनके उपरोक्त विषय में विचार हो उनको **स्वे**= अपने राज्य में **न**= नहीं **वासयेत्**= रहने देवे।

भावार्थ– ऐसा शत्रु जो दुर्दमनीय है= कठिनता से वश में करने योग्य है अपने काबू में आ जाये, और जिसका वध शीघ्र ही करने की इच्छा हो, तो सर्वप्रथम उसके घर को जला दिया जाये, दूसरी बात कि राजा अपने राज्य के अन्दर धनहीनों को नास्तिक=जो ईश्वर को ठीक रूप में मानने और जानने वाले न हों इनको और किसी भी प्रकार के भौतिक द्रव्यों की चोरी करने वालों को न बसने देवे।

प्रत्युत्यानासनाद्येन सम्प्रदानेन केनचित्।

प्रतिविश्रब्धघाती स्यात् तीक्ष्ण दंष्ट्रो निमग्नकः।। ३०।।

शब्दार्थ– **केनचित् येन**= यदि किसी कारण से शत्रु उपस्थित हो जावे तब उसके लिए, **प्रत्युत्थानासनाद्**= अपने आसन से खड़े होकर उसे सम्मान देवे आसन और भोजनादि को, **सम्प्रदानेन**= ठीक प्रकार से देवे, **प्रतिविश्रब्धघाती**= जो अपने ऊपर पूरा–पूरा विश्वास कर लेवे उस शत्रु को भी मारने में झिझक उत्पन्न न हो, **तीक्ष्णंदष्ट्रः**= क्रुद साँप की तरह तीखे दाँतों से ऐसा काटे कि, **निमग्नक**= जिससे वह पुनः खड़े होकर लड़ने का साहस ही उत्पन्न न कर सके।

भावार्थ– शत्रु के सभा आदि में उपस्थित होने पर राजा को चाहिए कि वह उसका उठकर स्वागत सम्मान करे योग्यतानुसार कोई वस्तु भेंट में प्रेम से देवे/शत्रु को विश्वास दिलावे कि हम आप पर

विश्वास करते हैं और समय आने पर तीक्ष्ण दाँतों के समान तीक्ष्ण अस्त्र–शस्त्र से पूरी तरह मार डाले।

अशंकितेभ्यः शङ्केत शंकितेभ्यश्च सर्वशः।
अशंऽक्याद् भयमुत्पन्नमपि मूलं निकृन्तति।। ३१।।

शब्दार्थ– अशंकितेभ्यः शङ्केत= राजा के लिए जो निसन्देह विश्वसनीय है उनसे भी पूर्ण आश्वस्त न होकर सन्देह करता रहे **च शंकितेभ्यश्च सर्वश**=और जो लोग सन्देहास्पद हैं उन पर तो सब तरह से सन्देह करे ही, **अशंक्याद् भयमुत्पन्नमपि**= यदि किसी स्थिति में सन्देह रहित व्यक्ति से भय प्राप्त होने लगे तो **मूलं निकृन्तति**= वह सम्पूर्ण धन वैभव का सर्वथा सर्वनाश कर देता है।

भावार्थ– राजा के अनुचर चाहे कितने ही विश्वसनीय क्यों न हों फिर भी उन पर पूर्ण विश्वास रखकर निश्चिंत नहीं हो जाना चाहिए, उन पर तो संदेह करे ही और जिन पर संदेह बना ही रहता है उनसे सब प्रकार की सावधानी सुरक्षा रखते हुए व्यवहार करे। यदि कदाचित् सन्देह रहित से भय उत्पन्न होने लगे, यदि उस पर ध्यान न दिया जाये तो राजा का समूल विनाश निश्चित ही सब प्रकार के वैभव को नष्ट–भ्रष्ट कर डालता है।

न विश्वसेदविश्वसते विश्वसते नाति विश्वसेत्।
विश्वासाद् भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति।। ३२।।

शब्दार्थ- **न**= नहीं, **विश्वसेद्**= विश्वास करे, **अविश्वसते**= अविश्वासनीय व्यक्ति पर, **विश्वस्ते**= विश्वास करने योग्य व्यक्ति पर भी, **न**= नहीं, **अति**= अधिक, **विश्वसेत्**= विश्वास करे, **विश्वासाद्**= विश्वसनीय व्यक्ति से, **भयम्**= डर, **उत्पन्नम्**= उत्पन्न हुआ, **मूलानि**= मूल सहित समूल, **अदि**= भी, **निकृन्तति**= काट डालता है।

भावार्थ- विश्वास न करने योग्य व्यक्ति पर विश्वास न करे किन्तु सर्वथा विश्वास पर रखे हुए व्यक्ति पर भी पूर्ण विश्वास न करे, क्योंकि विश्वासी व्यक्ति से यदि किसी भी प्रकार का भय उत्पन्न किया जाता है वह भय राजा के समस्त सुखों की जड़ को काट डालता है।

चारः सुविहित कार्य आत्मनश्च परस्य वा।
पाखण्डाँस्तापसादींश्च पर राष्ट्रेषु योजयेत्।। ३३।।

शब्दार्थ- **चारः**= गुप्तचर, **सुविहितः**= गुप्तचरों को अपने और शत्रु के राज्य के छिद्रों की नीति में निपुण नियुक्त करना चाहिए नीतिमान् बुद्धिमानों के द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार की परीक्षाओं से सुशिक्षित करके, **कार्यः**= स्थापित करे, **आत्मनः**= अपने राज्य में, **परस्य वा**= और **दूसरे**= शत्रु के राज्य में **पाखण्डान्**= पाखण्डपूर्ण धार्मिक कृत्य करने वालों को, **तापसादीन् च**= और विभिन्न प्रकार कष्टपूर्ण तप करने वालों को, **पर राष्ट्रेषु योजयेत्**= दूसरे देश में नियुक्त करे।

भावार्थ- अपने और दूसरे राज्य या देश के गुप्त भेदों को जानने के लिए सभी प्रकार की शारीरिक आदि परीक्षाओं में सुदृढ़ गुप्तचरों की नियुक्ति करे वे गुप्तचर, संन्यासी, तपस्वी का वेश बनाकर निवास करें, घूमते रहें तथा अन्य प्रकार का भी कोई ऐसा धार्मिक कपटपूर्ण वेश बनाकर सावधानी पूर्वक देशकाल परिस्थिति के अनुसार स्थान-स्थान पर विचरण करते रहें ताकि शत्रु के छिद्रों की जानकारी राजा को ठीक प्रकार से प्राप्त होती रहे।

उद्यानेषु विहारेषु पानागारेषु चाप्यथ।

चत्वरेषु च कूपषु पर्वतेषु वनेषु च

समवायेषु सर्वेषु सरित्सु च विचारयेत्।। ३४।।

शब्दार्थ- **उद्यानेषु**= बाग बगीचों में, **विहारेषु**= वह स्थान जहाँ लोगों का घूमना-फिरना होता हो, **पानागारेषु**= मद्यपान के स्थानों में, **च**= और, **अपि**= भी, **अथ**= इसके बाद, **चत्वरेषु**= चौराहों पर= जहाँ चार रास्ते मिलते हों, **च**= और, **कूपेषु**= कुओं पर, **पर्वतेषु**= पहाड़ों पर, **वनेषु**= वनों में, **समवायेषु**= जहाँ लोगों का जमघट लगता **हो**= **सर्वेषु**= सब स्थानों में, **सरित्सु**= नदियों के तटों पर **च**= और, **विचारयेत्**= इन स्थानों पर गुप्तचर लगे रहें।

भावार्थ- राजा को अपने राष्ट्र की रक्षा और समृद्धि के लिए अपने गुप्तचरों को बाग बगीचे भीड़ वाले स्थानों, शराब, अड्डों, चौराहों,

कुएं, पहाड़ और वन आदि स्थानों में नियुक्त करना चाहिए। क्योंकि इन स्थानों पर ही प्रायः राजा प्रजा संबन्धी चर्चाएं चला करती हैं। इन स्थानों पर गुप्तचरों की नियुक्ति करने से राज्य और प्रजा संबन्धी गुण दोषों की वास्तविकता का पता लग जाता है।

वाचा भृशं विनीतः स्याद् हृदयेन तथा क्षुरः।
स्मितपूर्वाभिभाषी स्यात् सृष्टो रौद्रस्य कर्मणे।। ३५।।

शब्दार्थ- वाचा= वाणी से, **भृशं**= अत्यधिक, **विनीतः**= विनम्र होवे, **हृदयेन**= हृदय से **तथा**= और, **क्षुरः**= छुरे की तरह पैनी धार वाला बना रहे, **स्मितपूर्वाभिभाषी**= दूसरे के बोलने से पहले ही अपने को प्रसन्न करके बोलने वाला, **स्यात्**= होवे **सृष्टः**= कार्य के करने को सुसज्जित, **रौद्राय**= भयंकर, **कर्मणे**= कर्म करने के लिए।

भावार्थ- राजा शत्रु के साथ व्यवहार काल में अत्यन्त सज्जनता प्रकट करे, किन्तु हृदय से पैने छुरे के समान शत्रु का नाश करने की भावना बनाए रखे, शत्रु को कड़ा और भयंकर दण्ड देने के अवसर पर भी प्रसन्नतापूर्ण वार्तालाप ही करे।

अञ्जलिः शपथः सान्त्वं शिरसा पादवन्दनम्।
आशाकरणमित्येवं कर्त्तव्यं भूतिमिच्छता।। ३६।।

शब्दार्थ- अञ्जलिः= दोनों हाथों को जोड़ लेना, **शपथः**= पुत्र आदि की शपथ लेना, **सान्त्वम्**= किसी कार्य को पूरा करने का

विश्वास दिलाना, **शिरसा**= सिर से, **पादवन्दनम्**= पैरों का स्पर्श कर प्रणाम करना, **आशाकरणम्**= आशायुक्त होना **इति**= यह **एवं**= इस प्रकार, **भूतिम्**= ऐश्वर्य, **इच्छता**-इच्छा करने वाले के लिए।

भावार्थ- राजा को चाहिए कि जब युद्धादि करने का उचित अवसर प्राप्त न हो, ऐसी स्थिति में शत्रु के उपस्थित होने पर हाथ जोड़ना शपथ लेना आदि व्यवहार जो श्लोक में कहे गए हैं इनमें से जो भी उचित व्यवहार करने योग्य हो वैसा कर लेवे, क्योंकि ऐश्वर्य की रक्षा करने के ये बड़े सशक्त उपाय हैं। अन्यथा शत्रु से भिड़ जाने पर सर्वस्व का नाश हो सकता है।

सुपुष्पितः स्यादफलः फलवान् स्याद् पुरारुहः।
आमः स्यात्पक्वसंकाशो न जीर्येत कर्हिचित्।। ३७।।

शब्दार्थ- सुपुष्पित= फूलों से लदा हुआ वृक्ष, **स्याद्**= होवे, **अफलः**:= फलरहित, **फलवान्**= फलवाला, **स्याद् होवे दुरारुहः**:=वृक्ष पर कष्ट से चढ़ना, **आमः**:= कच्चा, **स्याद्**= होवे, **पक्व**= पका हुआ, **संकाश**= समान, **न**= नहीं, **च**= और, **जीर्येत**= कमजोर, क्षीण, **कर्हिचित्**= कभी।

भावार्थ- राजनीति में निपुण राजा फूलों से लदे हुए वृक्ष के समान दिखे, परन्तु फल एक भी न दिखाई पड़ता हो, फल लगने पर भी वृक्ष इतना ऊँचा कि उस तक पहुंचना ही बड़ा कठिन काम हो जाय

अर्थात् लोग जब भी अपने स्वार्थ की पूर्ति करने के लिए प्रयत्नशील हों तो उनके कार्य में बार-बार बाधा उत्पन्न करे। वह हो तो कच्चा, परन्तु लोगों के पके फल के समान दिखे। स्वार्थी लोगों की धनादि की आशा पूरी होती तो दिखाई पड़े, परन्तु पूरी न हो। कभी उत्साह क्षीण न हो अर्थात् अपने धन को खर्च करके शत्रुओं का पोषण करते हुए स्वयं धनहीन न हो जावे।

अगर्वितात्मा युक्तश्च सान्त्वयुक्तोऽनुसूयिता।
अवेक्षितार्थः शुद्धात्मा मन्त्रयीत द्विजैः सह।। ३८।।

शब्दार्थ- राजा अगर्वितात्मा= अभिमान से युक्त न हो, **सान्त्वयुक्तः**= मन को शान्त और एकाग्र रखे, **अनुसूयिता**= वाणी से मधुर बोलने वाला हो, **अवेक्षितार्थः शुद्धात्मा**= दूसरे के दोषों को जाने, परन्तु प्रकट न करे, **द्विजैः= सह मन्त्रयीत्**= सब ओर ध्यान रखे, शुद्ध मन से द्विजों के साथ विचार करे।

भावार्थ- राजा को चाहिए कि वह मन में अहंकार को स्थान न दे, चित्त में एकाग्रता बनाये रखे, सबके साथ मधुर वाणी का प्रयोग करे तथा दूसरों के दोषों को प्रकट न करे, सब (राजकीय) विषयों को ध्यान में रखे और चित्त को शुद्ध रखकर द्विजों से विचार विमर्श करे।

कर्मणा येन केनैव मृदुना दारुणेन च।
उद्धरेद् दीनमात्मनं समर्थो धर्ममाचरेत्।। ३९।।

शब्दार्थ- राजा विपत्ति के समय **येन केन, कर्मणा**= जिस किसी कर्म के द्वारा, **मृदुना**= कोमल, **च**=और, **दारुणेन**= कठोर, **आत्मन दीनम् उद्धरेद्**= उस विपत्तिग्रस्त अवस्था से अपने को उबार ले, समर्थः **धर्मम् आचरेत्**= पुनः सब प्रकार से सशक्त होने पर धर्म का आचरण करने लग जाये।

भावार्थ- संकटग्रस्त राजा जिस किसी भी कठोर या सरल कर्म के द्वारा उस दुरवस्था से स्वयं का उद्धार कर लेवे, पश्चात् सामर्थ्य प्राप्त कर लेने पर फिर से धर्मयुक्त आचरण करना प्रारम्भ कर देवे।

न संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति।
संशय पुनरारुह्य यदि जीवति पश्यति।। ४०।।

शब्दार्थ- **न**= नहीं, **संशयमनारुह्य**= दुःख या कष्ट उठाए बिना, **नरः**= मनुष्य, **भद्राणि**= विभिन्न प्रकार के उत्तम सुख का, **पश्यति**= अनुभव करता है। **यदि**= यदि, **संशयः**= कष्ट, **पुनरारुह्य**= सहकर पुनः किसी प्रकार जीवित बच जाता है, **पश्यति**= तब वह सुख का अनुभव करता है।

भावार्थ- परिश्रम के कष्ट सहन किये बिना मनुष्य सुख प्राप्त नहीं कर सकता। जीवन में यदि कभी प्राण संकट भी उत्पन्न हो जाये, तो उस प्राण संकट से रक्षा करने में यदि सफल हो जाता है। उस स्थिति में अपना सुख चाहने की ही इच्छा उत्पन्न होती है।

योऽरिणा सह संधाय शयीत कृतकृत्यवत्।
स वृक्षाग्रे यथा सुप्तः पतितः प्रतिबुध्यते।। ४१।।

शब्दार्थ- **यः**= जो, **अरिणा सह**= शत्रु के साथ, **संधाय**= सन्धि करके, **शयीत**= सो जावे अर्थात् निश्चिंत हो जाये, **कृतकृत्यवत्**= अब इस संसार में मुझे जो कुछ करना था कर लिया अब और कुछ करने की आवश्यकता नहीं ऐसे व्यक्ति के समान, **स**= वह, **वृक्षाग्रे**=वृक्ष के किनारे की शाखा पर, **यथा**= जैसे, **सुप्तः**=सोया हुआ, **पतितः**= गिरा हुआ, **प्रतिबुध्यते**= जाग जाता है।

भावार्थ- जिस प्रकार वृक्ष के आगे के भाग की शाखा पर सोता हुआ मनुष्य जब धरती पर आ गिरता है तब वह पीड़ा से पीड़ित हुआ हुआ जाग पड़ता है इसी प्रकार जो राजा शत्रु राजा की बातों पर विश्वास करके उसके साथ सन्धि कर लेता है, पश्चात् पूर्णतः निश्चितं हो जाता है, यह सोचकर कि अब शत्रु से कोई भय नहीं, वह तभी सावधान होता है जब शत्रु उसके साथ विश्वासघात करता है अर्थात् सन्धि करके भी राजा को शत्रु राजा से सदैव सावधान रहना चाहिए।

नाछित्वा परमर्माणि नाकृत्वा कर्म दारुणम्।
नाहत्वा मत्स्यघातीव प्राप्नोति महतीं श्रियम्।। ४२।।

शब्दार्थ- **न**= नहीं, **अच्छित्वा**= बिना भेदन किये, **परमर्माणि**= शत्रु के मर्म स्थानों को, **न**= नहीं, **अकृत्वा**= बिना कर्म

किये, **दारुण**= भयंकर, **न**= नहीं, **अहत्वा**= बिना वध किये, **मत्स्यघाती इव**= मछेरों की तरह, **प्राप्नोति**= प्राप्त करता है, **महतीं**= बहुत अधिक, **श्रियम्**= ऐश्वर्य को।

भावार्थ- राजा मछुआरों की भाँति दूसरे के मर्मस्थानों को छिन्न-भिन्न किये बिना, अत्यन्त भयंकर कर्म किये बिना, युद्ध में सैकड़ों का वध किये बिना, बड़े भारी धन ऐश्वर्य को प्राप्त नहीं कर सकता।

कार्शितं व्याधितं क्लिन्नमपानीयमघासकम्।
परिविश्वस्तमन्दं च प्रहर्तव्यमरेर्बलम्।। ४३।।

शब्दार्थ- **कार्शितं**= अशक्त बलहीन, **व्याधितं**= रोग से पीड़ित, **क्लिन्नमपानीयमघासकम्**= सब तरफ से विश्वस्त निश्चेष्ट सी पड़ी हुई उपरोक्त स्थितियों में, **प्रहर्तव्यमरेर्बलम्**= शत्रु की सेना पर आक्रमण कर देना चाहिए।

भावार्थ- शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए नीति कुशल राजा को चाहिए जिस समय शत्रु सेना दुर्बल, रोगग्रस्त, दलदल या नदी में फँस गई हो हमें किसी से भय नहीं है, ऐसा अपने को निश्चित मानकर निश्चेष्ट हुई विश्राम की स्थिति में विश्राम कर रही हो, उसी समय घात लगाकर शत्रु सेना पर अत्यन्त वेग से आक्रमण कर देना चाहिए जिससे अपनी ही विजय होवे।

नास्य कृत्यनि बुध्येग्त् मित्राणि रिपवस्तथा।
आरब्धान्येव पश्येरन् सुपर्यवसितान्यपि।। ४४।।

शब्दार्थ- **न**= नहीं, **अस्य**= इस राजा के, **कृत्यानि**= क्रिया कलाप, **बुध्येरन्**= ज्ञान न होवे, **मित्राणि**= मित्रों को, **रिपवः**=शत्रु, **तथा**= और, **आरब्धानि एव**= आरम्भ कर दिये गए कर्मों को ही, **पश्येरन्**= देखें, **सुपर्यवसितान्यपि**= या अच्छी तरह समाप्त किये हुए कर्मों को भी।

भावार्थ- राजा कब और किस कर्म को किस प्रकार करने की योजना बना रहा है, इसका बोध मित्र और शत्रु किसी को भी न होना चाहिए, क्योंकि ऐसा होने से किसी बड़ी हानि होने की संभावना है। कर्म के आरम्भ का या अच्छी तरह सम्पन्न हो जाने पर ही लोग देख सकें या जान पाएँ।

भीतवत् संविधातव्यं यावद्भयमनागतम्।
आगतं भयं दृष्ट्वा प्रहर्त्तव्यमभीतवत्।। ४५।।

शब्दार्थ- **भीतवत्**= डरा हुआ जैसा होकर, **संविधातव्यम्**= टालमटोल करते रहना चाहिए, **यावद् अनागतम् भयम्**= विपत्ति या संकट का भय जब तक दूर है आया नहीं है, **आगतम् तु भयं दृष्ट्वा**= किन्तु जब विपत्ति का संकट साक्षात् भय के रूप में सामने देखें तब तो, **अभीतवत्**= सर्वथा निर्भीक होकर शत्रु पर **आघात**= प्रहार करना चाहिए।

भावार्थ- जब तक संकट का भय साक्षात् उपस्थित न हो तब तक भयभीत व्यक्ति की तरह टालमटोल करते रहना चाहिए, किन्तु जब साक्षात् भय का निमित्त समक्ष उपस्थित हो जाय फिर तो सर्वथा भय रहित होकर शत्रु पर वेग से आघात् करना चाहिए।

दण्डेनोपनतं शत्रुमनुगृह्णाति यो नरः।
स मृत्युमुपगृह्णीयाद् गर्भमश्वतरी यथा।। ४६।।

शब्दार्थ- **दण्डेन उपनतम्**= दण्ड से अधीन किया हुआ **शत्रुम्**= शत्रु पर **यः**= जो **अनुगृह्णाति**= दया का भाव रखता है **सः**= वह मनुष्य **मृत्युम्**= अपनी मृत्यु को ही बुला लेता है **गर्भम्**= गर्भ को **अश्वतरी**= खच्चरी **यथा**= जैसे।

भावार्थ- जो राजा या मनुष्य दण्ड से शत्रु को पकड़ अपने अधीन रखकर उस पर दया का भाव रखता है वह साक्षात् अपनी मृत्यु को ही बुलाता है, जिस प्रकार खच्चरी अपने गर्भ को धारण करने वाली होकर मानों गर्भ के रूप में मृत्यु को ही धारण करती है।

अनागतं हि बुध्येत यच्च कार्यं पुरःस्थितम्।
न तु बुद्धि क्षयात्किञ्चिदतिक्रामेत् प्रयोजनम्।। ४७।।

शब्दार्थ- **अनागतम्**= जो कार्य किया जाने वाला हो **हि**= निश्चय से **बुध्येत्**= उसे बुद्धि के द्वारा ठीक-ठीक विचार करे **यत्**= जो **च**= और **कार्यम्**= कार्य **पुरःस्थितम्**= सम्मुख उपस्थित है न **तु**= नहीं

बुद्धिक्षयात्= ज्ञान का नाश होने से **किञ्चिद्**= कुछ **अतिक्रमेत्**= त्याग करे **प्रयोजनम्**= प्रयोजन, लक्ष्य को।

भावार्थ– भविष्य में किये जाने वाले कार्य को करने से पहले बुद्धि से खूब सोच–विचार करके तत्पश्चात् कार्य के प्रकार का निश्चय करके तदनुसार कार्य से संबन्धित व्यवस्था करे, वैसे ही सम्मुख उपस्थित होने वाले कार्य के सम्बन्ध में भी सोच विचार कर निर्णय लेवे जब तक बुद्धि से कार्य का निश्चय ठीक–ठीक न हो तब तक किसी कार्य या प्रयोजन को त्यागना नहीं चाहिए।

आशां कालवतीं कुर्यात्कालं विघ्नेन योजयेत्।
विघ्नं निमित्ततोब्रूयान्निमित्तं वापि हेतुतः।। ४८।।

शब्दार्थ– आशां कालवतीं कुर्यात्= राजा के द्वारा किसी व्यक्ति को दी गई आशा को पूरा करने में काल की अवधि बढा दे और जब कार्य को पूरा करने का समय निकट आ गया हो **कालम् विघ्नेन योजयेत्**= तब उसमें कोई न कोई विघ्न डाल देवे। **विघ्नं निमित्ततः ब्रूयाद्**= और वह विघ्न सकारण कह दे **वापि हेतुतः**= और उस कारण को सप्रमाण सिद्ध कर दिया जावे।

भावार्थ– कोई मनुष्य किसी राजादि को अपना कार्य पूरा करने को कहे तो उसे पूरा करने की आशा तो बँधाए लेकिन पूरा न करे अर्थात् समय को लम्बा खींचता चला जाये कभी ऐसा होता दिखे कि

कार्य पूरा होने वाला है उसी समय कोई बाधा खड़ी कर दे और वह बाधा निश्चित ही बाधा है ऐसा सिद्ध करके दिखावे।

तालवत् कुरुते मूलं बालः शत्रुरुपेक्षितः।
गहनेऽग्निरिवोत्सृष्टः क्षिंप्र संजायते महान्।। ४९।।

शब्दार्थ- तालवत्= ताड़ वृक्ष के समान **कुरुते**= करता है **मूलम्**= जड़ **बालः**= छोटा **शत्रुः उपेक्षितः**= उपेक्षा किया गया **शत्रु गहने**= घने जंगल में **अग्निः इव**= अग्नि की तरह **उत्सृष्टः**=छोड़ा गया **अग्नि क्षिप्रम्**= शीघ्र **संजायते**= उत्पन्न हो जाता है **महान्**= विशाल।

भावार्थ- यदि शत्रु को दुर्बल समझ कर छोड़ दिया जाता है या उसकी ओर ध्यान नहीं देता (यह समझकर कि यह हमारा क्या बिगाड़ लेगा) वही शत्रु जैसे घने विशाल जंगल में अग्नि की छोटी सी चिंगारी सम्पूर्ण वन को लिए विनाशकारी सिद्ध होती है, धीरे-धीरे बलवान् होकर बड़े से बड़े राज्य के लिए महान् विनाश करने वाला हो जाता है।

भ्रातृव्या बलिनो यस्मात् पाण्डुपुत्रा नराधिप।
पश्चात्तापो यथा न स्यात् तथा नीतिर्विधीयताम्।। ५०।।

शब्दार्थ- भ्रातव्याः= भतीजे **बलिनः**= बलवान् **यस्मात्**= जिससे **पाण्डुपुत्राः**= पाण्डवों के पुत्र **नराधिप**= मनुष्यों के स्वामी **पश्चात्ताप**= पश्चात्ताप **यथा**= न **स्यात्**= जिस प्रकार न होवे तथा

नीतिः विधीयताम्= उसी प्रकार की नीति का आश्रय लिया जाये जिससे पश्चात्ताप आदि न करना पड़े।

भावार्थ– हे राजन! आपके भतीजे पाण्डव अपरिमित बल को धारण करने वाले हैं अतः उनके साथ आप कुछ ऐसी नीति का प्रयोग कीजिए जिससे कि आने वाले भविष्य में आपको पश्चात्ताप और आत्मग्लानि की अग्नि में न जलना पड़े।

एवमुक्त्वा सम्प्रस्थे कणिकः स्वगृहं ततः।
धृतराष्ट्रोऽपि कौरव्यः शोकार्तः समपद्यत।। ५१।।

शब्दार्थ– **एवम उक्त्वा**= इस प्रकार कहकर **सम्प्रतस्थे**= घर की ओर प्रस्थान करने के विचार में **कणिकः कणिक स्वगृहं**= अपने घर को **ततः**= वहाँ से चले गए, **धृतराष्ट्रः**= धृतराष्ट्र **अपि**= भी **कौरव्यः**= कौरवों के वंशज **शोकार्त**= दुःख से पीड़ित **समपद्यतः**= हो गए।

भावार्थ– इस प्रकार धृतराष्ट्र को नीति का उपदेश करके कणिक अपने घर लौट गए और कौरवों के वंशज धृतराष्ट्र पुनः शोक में डूब गए।

लेखक परिचय

जन्म : १५.०७.१९५७

शिक्षा : आधुनिक शिक्षा-प्रभाकर
(म.द. विश्वविद्यालय, रोहतक)
दर्शन योग महाविद्यालय रोजड़ (गुजरात) में सुयोग्य आचार्यों द्वारा पाँच वैदिक दर्शनों तथा गुरुकुल खानपुर एवं ऋषि उद्यान में रहते हुए व्याकरण, महाभाष्य व निरुक्त आदि शास्त्रों का अध्ययन। मीमांसा दर्शन का अध्ययन मैसूर में माननीय श्री वासुदेव परांजपे जी से किया।
इन सभी विद्वानों एवं आचार्यों के लिए मैं हृदय से अत्यन्त कृतज्ञता प्रकट करता हूँ कि जिनके आचरण, व्यक्तित्व तथा विद्वत्ता से प्रभावित होकर, मैं जीवन और संसार के यथार्थ को समझने में सफल हुआ।

कार्यक्षेत्र : दर्शनादि ग्रन्थों का अध्ययन व अध्यापन।
वैदिक धर्म का प्रचार, प्रवचन एवं लेखनादि में रुचि।

लेखन : धर्म के दस प्रतीक, श्रीकृष्ण गौरवगाथा इत्यादि पुस्तकों की रचना तथा स्मारिकाओं में लेख।

आचार्य सत्येन्द्रार्य
वानप्रस्थ साधक आश्रम,
आर्यवन, रोजड़, पत्रा. सागपुर, जि. साबरकांठा

: प्रकाशक :
वानप्रस्थ साधक आश्रम,
आर्यवन, रोजड़, पत्रा. सागपुर, जि. साबरकांठा